कहा था ऋषि ने

शेख नूरुद्दीन वली के चुने हुए
कश्मीरी 'श्लोकों' का हिन्दी भाषान्तर



भाषान्तरकार : शशि शेखर तोषखानी



कहा था ऋषि ने

शेख नूरुद्दीन वली के चुने हुए
कश्मीरी 'श्लोकों' का हिन्दी भाषान्तर

भाषान्तरकार
शशि शेखर तोषखानी

जे० एण्ड के० एकेडेमी आफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज, जम्मू



श्री मुहम्मद यूसुफ टेंग
सचिव

जे० एण्ड के० एकेडेमी आफ आर्ट,
कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज, जम्मू
द्वारा प्रकाशित

मूल्य : 4 रुपये 50 पैसे

ओरियंटल प्रिंटिंग प्रेस,
पक्का डंगा, जम्मू द्वारा मुद्रित

प्रथम संस्करण : १९७५

KAHA THA RISHI NE

Hindi Translation of Sheikh Noor-ud-din Wali's. Sayings by :- Shri Shashi Shekher Toshakhani.

कुछ शब्द



कश्मीर के सांस्कृतिक अतीत ने आदर्श मानव-मूल्यों के जिन दीपस्तम्भों से लोक-जीवन को प्रकाशत किया है, उन्हें स्थापित-प्रतिष्ठित करनेवाले दृष्टा-मनीषियों में महान संत और कवि शेख़ नूरुद्दीन वली का नाम यहाँ के जन-जन के मन में अपार श्रद्धा का भाव जाग्रत करता है। गहन आध्यात्मिकता और व्यापक मानवीय करुणा के पावन रंगों से रंजित उनका काव्य-स्वर मनुष्य की आत्मा को उच्चतम प्रेरणाओं से स्फूर्त्त करने की शक्ति लिये है। यह स्वर व्यक्ति और ईश्वर के रागात्मक सम्बन्धों और मानवीय चेतना की अखण्डता को रेखांकित करने वाले महान भक्तिकालीन संतकवियों-कबीर, जायसी, तुलसी, सूर, नानक, बाबा फरीद, बुल्लेशाह, तुकाराम आदि की वाणी से मेल खाता है और प्रमाणित करता है कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारतीय काव्य-परम्परा की भाव-धारायें एक ही दिशा में प्रवहमान रहीं हैं। शेख नूरुद्दीन भी भक्ति आन्दोलन के इन उन्नायकों की भाँति प्रेम, त्याग और ईश्वरीय सत्ता के प्रति अटूट आस्था से विकासित नैतिक-मूल्यों को अपने काव्य के माध्यम से प्रचारित करते हैं ताकि मानव-जीवन अधिक अर्थवान और उन्नत बन सके। लेकिन केवल

आध्यात्मिक या नैतिक उपदेश ही शेख नूरुद्दीन के काव्य की दिशा-रेखा नहीं, पीड़ित मानवता के प्रति गहरी सम्वेदना से भी वह पूर्ण है। सामाजिक जीवन में व्याप्त विषमताओं और विडम्बनाओं को भी उनकी कवि दृष्टि ने सही रुप में पहचाना और उसे स्वस्थ आधार प्रदान करने का आग्रह उनके अनेक पदों में व्यक्त हुआ है। सामाजिक और धार्मिक ब्राह्याचारों पर कवि ने खुलकर प्रहार किये हैं ठीक उसी प्रकार जैसे कबीर आदि अन्य मध्य-युगीन भारतीय सूफी-संतों ने। मानवीय समस्याओं का एकमात्र समाधान उनके लिये 'साहब' के प्रति निश्छल आत्म-समर्पण में है और द्वेष-घृणा-स्वार्थ रहित तपस्यापूर्ण आचरण को वे धर्म का सार मानते हैं। वस्तुत: इस्लाम के सही और सच्चे रूप के वे कश्मीर घाटी में महानतम उद्घाटक थे। मतान्धता और धार्मिक-सामाजिक रूढ़िवादिता का उनसे प्रबल यहाँ शायद ही कोई विरोधी हुआ हो। कहा जा सकता है कि जातीय और धार्मिक सौहार्द की जो गौरवपूर्ण परम्परा कश्मीर में शताब्दियों से चली आ रही है, शेख नूरुद्दीन के जीवन और काव्य ने उसे विशेष रूप से सशक्त बनाया है। यही कारण है कि "नुन्द ऋषि" के नाम से लोक-प्रिय इस महान कश्मीरी कवि-सन्त का मंगलमय संदेश किसी विशेष धर्म-सम्प्रदाय, जाति या तबके के लिए नहीं सम्पूण मानवता के लिए है। जन-जन के मानस तक इस संदेश को पहुंचाने के लिए उन्होंने जनभाषा कश्मीरी को अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम चुना और कश्मीरी काव्य के प्रारम्भिक विकास में लल्लेश्वरी की भाँति महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

शेख नूरुद्दीन के पद या 'श्लोक' कश्मीरी काव्य के साथ-साथ कश्मीरी भाषा के आदिकालीन स्वरूप पर विशेष प्रकाश डालते हैं। यह महान काव्य-सम्पदा कवि के शिष्यों द्वारा रचित संकलित "ऋषिनामों" और "नूरनामों" में शताब्दियों से लिपिबद्ध रूप में उपलब्ध रही है। लेकिन दुर्भाग्य से सम्यक् पाठ-शोध के आभाव में उसके पूरे रसास्वादन से हमें अब तक वंचित रहना पड़ा है। अब-अब इस दिशा में अनुसन्धान के कुछ प्रयास हुए हैं जिन्हें किसी भी प्रकार से पर्याप्त नहीं कहा जा सकता यद्यपि हज़रत शेख के कलाम का शुद्ध रूप प्रस्तुत करने में उनसे कुछ सहायता मिल सकती है। अभी पिछले दिनों जम्मू-कश्मीर राज्य की साँस्कृतिक अकादमी ने इस कलाम के अनेक उपलब्ध हस्तलेखों की एक महत्त्वपूर्ण प्रदर्शिनी च्रार-ए-शरीफ में आयोजित की थी ताकि उसके पाठानु सन्धान के महत्त्व की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हो और इस दिशा में प्रयत्न को और गति मिल सके।

कश्मीरी संत-परम्परा के इस प्रतीक-पुरुष और कश्मीरी काव्य के इस आदि उन्नायक की विचार-दृष्टि और काव्य-रस से कश्मीरी-इतर भाषी-अधिक परिचित नहीं हैं। भारत की समन्वित संस्कृति के विकास का इतिहास और भारतीय काव्य की मूलभूत समानताओं की सही समझ उत्पन्न करने की दृष्टि से शेख नूरुद्दीन के काव्य का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है जिसके माध्यम से कश्मीर के इस महान संतकवि का संदेश हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषायें बोलने वाले विशाल जन-समुदाय तक पहुँचाया जा सकता है।

इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए राज्य की कल्चरल अकादमी ने श्री शशि शेखर तोषखानी से यह विशेष अनुरोध किया कि वे हज़रत शेख के चुने हुए पदों का हिन्दी में अनुवाद करे। यह कार्य कितना मुश्किल था इसका अंदाज़ा इससे लगाया जा सकता है कि लिपि की समानता के बावजूद अभी उर्दू तक में शेख नूरुद्दीन का कलाम नहीं आ सका है। मुझे यह कहते हुए बड़ी खुशी होती है कि श्री शशि शेखर ने इस अत्यन्त कठिन कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। मुझे आशा है कि इस अनुवाद के माध्यम से शेख नूरुद्दीन की वाणी सम्पूर्ण देश में अनुगुंजित होगी और भारतीय भक्तिकाव्य के संदर्भ में उसका विशेष अध्ययन किया जायेगा।

—मुहम्मद यूसुफ टेंग
सेक्रेटरी,
जम्मू एण्ड कश्मीर
एकेडमी ऑफ आर्ट,
कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़ जम्मू।

पीठिका



लल्लेश्वरी के बाद कश्मीरी कविता के मध्ययुगीन बिकास के प्रमुख प्रतिनिधि, संत-कवि शेख नूरुद्दीन वली (१३७६-१४३८) ने लोक-मानस को गहराई से प्रभावित-प्रेरित किया है। उनकी अनेक काव्य-पंक्तियां कश्मीर की लोक-साँस्कृतिक परम्परा का अंग बन गयी हैं। आध्यात्मिक रहस्यानुभव की अभिव्यक्ति, आचरण की शुद्धता और शुचिता का उपदेश, धार्मिक बाह्याचार और सामाजिक अन्याय का विरोध—उनके काव्य के विषय और संदर्भ वहुत कुछ वही हैं जो भारतीय सिद्ध, संत और सूफी काव्य के। उसका स्वर और रस वैसा ही है, लहजा और मुहावरा भी वही। भक्ति की उसी रहस्यवादी भावभूमि पर शेख नूरुद्दीन वली हमें खड़े मिलेगे जिस पर कबीर लुकाठी हाथ लिये घर फूंकने की चुनौती देते हैं और जायसी पंडितों से अपनी उक्तियों का 'अरथ' बूझने को कहते हैं। समानता के ये बिन्दु भारतीय काव्य-चेतना की मूलभूत एकता को साक्ष्यांकित करते हैं।

शेख नूरुद्दीन को जो अपार प्रतिष्ठा मिली है वह कवि-रूप से कहीं अधिक उनके संत-व्यक्तित्व पर आधारित है। यद्यपि

उनके अधिक पद लोक–समुदाय में प्रचारित नहीं हैं, पर उनके आध्यात्मिक चमत्कारों और करिश्मों के किस्सों का कोई अंत नहीं। यही कारण है कि उनके जीवन के बारे में उपलब्ध प्रामाणिक तथ्य बहुत कम हैं। उनके शिष्यों और अनुयायियों द्वारा रचित "ऋषि नामों" और "नूरनामों" में चामत्कारिक घटनाओं का कुछ ऐसा घटाटोप है कि वास्तविकता सतह पर नहीं आती। शेख के जीवन और काव्य के विषय में वस्तुतः श्रद्धा–प्रदर्शन ही अधिक हुआ है, ऐतिहासिक तथ्यान्वेषण कम उनकी अधिकांश काव्य–सम्पदा अब भी वैज्ञानिक पाठशोध और अर्थ–संधान के अभाव में अपरिचय के अंधेरों में पड़ी हुई है।

'ऋषिनामे'–और और लोक-परम्परा भी–कवि का सम्बन्ध कष्टवाड़ के राजवंश से जोड़ते हैं। उनमें दिये विवरणों के अनुसार कवि के दादा राजनीतिक उथल–पुथल के कारण राज छोड़कर कश्मीर घाटी भाग आये। उनके पिता सालारदीन ने इस्लाम स्वीकार किया और कयमूह गांव में रहने लगें। मां राजपूत वंश की थीं और कविता करती थीं। पत्नी जयद्यद भी। मां की इच्छानुसार शेख जुलाहे का धन्धा सीखने तो गये, पर मन न रमा और कृषि–कर्म को ही जीविकोपार्जन का साधन बनाया।

शेख नूरुद्दीन को कश्मीर के (मुसलमान) "ऋषि" सम्प्रदाय का संस्थापक माना गया है, पर अपने पूर्ववर्ती कुछ प्रतिष्ठित "ऋषियों" का नामोल्लेख अपने एक पद में करते हुए उन्होंने स्वयं को सातवां 'ऋषि' घोषित किया है। बहुत सभव है कि यह 'ऋषि' परम्परा कश्मीर में बहुत प्राचीनकाल से चली आ रही हो और

इस्लाम के आगमन के बाद भी यथावत् बनी रही। "ऋषियों" का धर्म-परिवर्तन भले ही हुआ हो, परम्परा का मूल स्वरूप नहीं बदला। इस बात का साक्ष्य स्वयं शेख नूरुद्दीन के पद प्रस्तुत करते हैं। कबीर और अन्य संत-कवियों की भांति ये "ऋषि" "वेद-कतेब" में निर्देशित धार्मिक रीति-नीतियों के अक्षरशः पालन के प्रति उदासीन रहे और धार्मिक मिथ्याचार का विरोध करते हुए इन्होंने धर्म के लोकप्रिय सर्वग्राह्य रूप को ही प्रचारित-प्रतिष्ठित किया। व्यक्तिगत उदाहरण द्वारा लोगों को आचरण की शुद्धता की ओर प्रेरित करने की दिशा में ये विशेष आग्रहशील रहे। मुसलमान बनने के बाद भी इनके द्वारा संस्कृत "ऋषि", संज्ञा को अपने लिए बनाये रखना संकेतित करता है कि धार्मिक कठमुल्लाओं के जुनूँ पर आधारित इस्लाम का रूप इन्होंने स्वीकार नहीं किया। जो धार्मिक भाषा ये लोग बोलते-समझते थे उसके व्याकरण के मुख्य तत्त्व थे सरल जीवन, लोकोपकार, तितिक्षा, 'ज़िक्र' और 'फ़िक्र' (नामोच्चारण और चिन्तन)। कवि तो ये थे ही और सामान्य जनता में बेहद लोकप्रिय। इनकी लोकप्रियता का कुछ अनुमान अबुलफ़ज़ल और जहाँगीर के विवरणों द्वारा हो सकता है। मांस-त्याग और वन्य शाकों का आहार, गुहावास इन्द्रियदमन आदि अनेक बातें इस परम्परा के हिन्दु अतीत, या कम से कम इस पर हिन्दू प्रभाव, को सूचित करती हैं।

अपने पूर्ववर्ती "ऋषियों" का उल्लेख करते हुए शेख नूरुद्दीन ने इस परम्परा का सम्बन्ध सीधे हज़रत मुहम्मद से जोड़ा है— "अवल रिषी अहमद रिषी"! पर ऐसा केवल पैगम्बर के प्रति

श्रद्धाभाव के कारण। उन्होंने उसी पद में "हम ऋषि" और "डण्डकवन" के जुल्कार अथवा "जनकार ऋषि" का नाम भी लिया है। "रुम ऋषि" के बारे में कुछ का मत है कि उन्हें कश्मीर के रोमूह गांव में दफ़नाया गया था तो कुछ उन्हें इस्लामी विश्वास के एक मिथकीय पुरुष हज़रत खिज्र से सम्बद्ध करते हैं। लेकिन कश्मीरी हिन्दू पुराण-प्रसिद्ध लोमष ऋषि को ही "रुम ऋषि" कहते हैं और उनकी-सी लम्बी आयु का आशीर्वाद देते हैं। इसी भांति "डण्डकवन" अथवा दण्डकवन भी हिन्दू पौराणिक भूगोल का एक परिचित स्थल है, यद्यपि कुछ विद्वान कश्मीर के एक गांव के साथ उसकी पहचान स्थिर करते हैं। कैसे ये नाम-कश्मीर के मुसलमान "ऋषियों" के साथ सम्बद्ध हुए, निश्चय से कहा नहीं जा सकता। संभव है कि इन पौराणिक हिन्दू ऋषियों और स्थलों को कश्मीर के "ऋषि" सम्प्रदाय में प्रारम्भ में अत्यधिक प्रतिष्ठा रही हो और बाद में अन्य व्यक्तियों और स्थानों को भी उनके-से नाम दे दिये गये हों !

जो हो, इस ऋषि-सम्प्रदाय और विशेषकर शेख नूरुद्दीन के प्रति स्थानीय जनता में अपार श्रद्धा—भावना विद्यमान रही है। "नुन्द ऋषि" और 'सहजानन्द' के नाम से प्रसिद्ध शेख को हिन्दू—मुसलमान दोनों सम्प्रदायों में विपुल और व्यापक सम्मान मिला है। कहते हैं कि १८०६ इ० में कश्मीर के अफग़ान गवर्नर, अतामुहम्मद खान ने अफग़ानिस्तान के शासन से स्वयं को स्वतंत्र घोषित करते हुए शेख नूरुद्दीन के नाम का सिक्का जारी किया (बताया जाता है कि कुछ सिक्के लाहौर संग्रहालय में सुरक्षित हैं)। यह सच है तो इससे कवि की लोकप्रियता का कुछ

अंदाज़ा लगाया जा सकता है। दुनिया में शायद ही किसी कवि को ऐसा सम्मान मिला हो। शेख की मृत्यु पर जनाज़े में शामिल होनेवालों में ज़ैन-उल-आबिदीन "बडशाह" भी थे, जो उस समय कश्मीर के युवराज थे। कश्मीर के च्.रार-ए-शरीफ नामक स्थान में शेख को दफनाया गया जहां उनके मज़ार पर प्रतिवर्ष भारी मेला लगता है।

धर्म के लोकप्रिय रूप के प्रतिपादन के कारण शेख नूरुद्दीन को आलिमों, सादात और मुल्लाओं का विशेष विरोध सहना पड़ा। अरबी–फारसी वे विशेष पढ़े-लिखे न थे, इस बात को लक्ष्य करते हुए सादात लोगों ने उन्हें 'अनपढ़' तक कह डाला है! अपनी कविता में शेख ने भी इन लोगों पर कसकर और खुलकर प्रहार किये हैं। सिद्धों और कबीर सदृश सतकवियों की भांति उन्होंने कोरे पुस्तकीय ज्ञान की खिल्ली उड़ायी है। साधनाहीन आलिमों को 'भारवाही गधे' कहकर पुकारा है और लोगों को सावधान किया है कि ये गधे उनकी केसर की बगिया को न चर जाँय! मुल्लाओं को भी कवि ने बख्शा नहीं है और जहाँ-तहाँ उपहास का लक्ष्य बनाया है—

मुल्लाओं की पगड़ी भी क्या शानदार है
कैसे चलते अकड़-अकड़कर इसको पहने!
पाँव ज़री की जूती डाले, तन पर चोगा
और काँख में खाने की तश्तरी पँसेरी
दुर्गम पर्वत लाँघ कमाने जाओ रोज़ी,
औ' रोज़ी से मुल्लाओं को भोज खिलाओ।

शेख नूरुद्दीन केवल अध्यात्म के ऊर्ध्व लोक में संसार की समस्याओं से निस्संग और उदासीन रहनेवाले संत नहीं, अपने समय और समाज की विसंगतियों के प्रति काफी सचेत कवि भी थे। आर्थिक कठिनाइयों और अभावों का अनुभव उन्होंने स्वयं अपने जीवन में किया था। सामाजिक विषमताओं के प्रति उनका व्यंग इसीलिए काफी धारदार है। "तप्त धातु की चादर" पर चलने की पीड़ा उन्होंने ज़िन्दगी भर झेली। दरिद्रता को ईश्वरीय महिमा से मंडित करके इस पीड़ा की मनोवैज्ञानिक क्षतिपूर्ति की प्रवृत्ति अन्य मध्ययुगीन सन्तों की भांति उनमें भी है। उस समाज-व्यवस्था के प्रति शेख क्षुब्ध हो उठते हैं जिसमें धनी-मूढ़ तुरग पर चढ़े-चढ़े ऐंठते हैं और सामान्य जनों के घर बस साँय–साँय रहती है। यहाँ माँस-पुलाव उड़ता है तो वहाँ भरपेट खाना भी मयस्सर नहीं। लेकिन अन्त में वे यह कह कर संतोष कर लेते हैं कि —

दुनिया है मिली अरे दुनियादारों को
मत गँवा गाँठ की, गिन मत दीनारों को
प्रभु को सुमिरेंगे : श्रेय वही पायेंगे
औ' नैया अपनी पार लगा जायेंगे

जीवन के दैनिक अनुभवों और परिचित दृश्यों से कवि ने अपने उपमान और प्रतीक चुने हैं—विशेषकर कृषक जीवन से। कृषि-कर्म से सम्बन्धित शब्दावली और रूपकों की उसके काव्य में आवृत्ति है। उसकी कविता में गूढ़-गाढ़ गहरे अर्थों को ढूँढ निकालनेवालों की कमी नहीं, पर वास्तविकता यह है कि शेख

नूरुद्दीन मूलतया उलटबांसी के कवि नहीं हैं। उनकी अभिव्यक्ति पर भी उनके किसान-व्यक्तित्व की छाया है। उसमें हल और कोल्हू में जुते बैल की नीरस ज़िन्दगी की ऊब का बिम्ब उभरता है जिससे त्राण केवल 'ज़िक्र' और 'फ़िक्र' से ही मिल सकता है; और निरन्तर कर्मरत कृषक का बिम्ब भी जो समय पर हल चला कर, बीज बोकर, गोड़ी और निराई करके "मीठे फल की आशा" करता है। उनकी अनुभूति के एक छोर पर "लामकान" तक जा पहुंचने का रोमाँच है तो दूसरे पर संसार की क्षणभंगुरता और मृत्यु का संत्रास! मनुष्य और ईश्वर के रहस्यमय प्रेम–सम्बन्धों को जहाँ उन्होंने उद्घाटित–व्याख्यायित किया है, वहाँ मार्मिक कविता बन पड़ी है:

प्रेमः कि ज्यों मां का इकलौता पुत्र मरे
वह पल भर पलकें झपकाये तो कैसे।

शेख नूरुद्दीन के पदों को 'श्रुक्य' अर्थात् 'श्लोक' कहा गया है। यह बात काफ़ी महत्त्व रखती है, क्योंकि इससे प्रारम्भिक कश्मीरी कविता की छन्द-प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। नुन्द ऋषि के 'श्लोक' संस्कृत के श्लोक छन्द की शास्त्रीय परिभाषा के अक्षरशः अनुरूप न भी हों, ग्रियसर्न के इस कथन को झुठलाते अवश्य हैं कि कश्मीरी भाषा अपनी आन्तरिक प्रकृति के कारण फ़ारसी छन्दोविधान के अनुकूल है। प्रारम्भिक कश्मीरी के एक और लोकप्रिय छन्द–रूप 'वचन' में भी शेख नूरुद्दीन ने काव्य-रचना की है। उनसे पूर्व लल्लेश्वरी भी इस छन्द-रूप का प्रयोग कर चुकी थीं। 'वचन' चार पंक्तियों का एक छन्द है जिसमें अंतिम पंक्ति की तुक प्रथम तीन पंक्तियों से भिन्न होती है पर

एक ही भावसूत्र में पिरोये गये अन्य पदों की हर चौथी पंक्ति से मेल खाती है। संस्कृत छन्दों का प्रयोग शेख की मृत्यु के कुछ ही वर्ष पश्चात रचित कश्मीरी काव्य–कृतियों, "बाणासुरकथा" और 'सुखदुःख मोहमाया जालचरितम्' में भी हुआ है, यद्यपि श्लोक और वचन का नहीं। फारसी छन्दों का प्रयोग कश्मीरी कविता में बहुत देर से और फारसी काव्य के प्रभाव के फलस्वरूप हुआ। शेख नूरुद्दीन के श्लोक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि कश्मीरी की मौलिक छन्द–प्रवृत्ति फारसी छन्दोविधान से भिन्न थी।

जिस रूप में आज शेख नूरुद्दीन के पद उपलब्ध हैं वह उनकी वास्तविक भाषा-स्थिति का परिचायक नहीं। शेख के शिष्यों ने इन पदों को उनकी मृत्यु के उपरान्त लिपिबद्ध किया और उनकी जो प्राचीनतम प्रति आज हमारे पास है वह कवि से दो-ढाई शताब्दी बाद की है। इस व्यापक अन्तराल में इन पदों पर अनेक भाषिक परतें चढ़ीं और उनका मूलरूप काफी परिवर्तित हो गया। इस रूप का सधान आज पूर्णतया सम्भव नहीं पर शेख की मृत्यु के कोई आठ वर्ष बाद रचित काव्य-कृति "बाणासुरकथा" की भाषा को देखकर उसके विषय में अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है। दुर्भाग्य से 'रिषिनामों' और 'नूरनामों' में उदाहरण स्वरूप दिये गये उनके पदों को काफी लापरवाही से लिखा गया है और अनेक शब्द अत्यन्त अस्पष्ट हो गये हैं। इतना स्पष्ट है कि लिपिबद्ध होने तक मौखिक परम्परा के दो-ढाई सौ वर्षों में—और उसके बाद भी-संस्कृत मूल के शब्दों का स्थान धीरे–धीरे फारसी–अरबी शब्दों ने लिया होगा। 'रिषिनामों' में संग्रहीत पदों से तो कम से कम सतारहवीं

शताब्दी की कश्मीरी का स्वरूप स्पष्ट होता है। फिर भी अनेक प्राचीन भाषिक प्रयोग भी उनमें सुरक्षित रहे हैं। इन पदों में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द इतनी अधिक संख्या में मिलते है कि आश्चर्य होता है। काम, क्रूद (क्रोध), मोह, अहंकार, मन्मथ, रथी, भुवन, दिश, शृगाल, काम, दास, पाप, तप, विनत आदि शब्दों का प्रयोग पुरानी कश्मीरी के वास्तविक स्वरूप पर प्रकाश डालता है।

कवि द्वारा प्रयुक्त अनेक शब्द आधुनिक कश्मीरी में व्यवहृत नहीं होते। एक ऐसा ही शब्द है 'शुनितव' (=सुनो तो∠सं० शृणु)। आज कश्मीरी में 'सुनना' के लिए 'बोज़ुन' शब्द व्यवहृत होता है जो अपने मूल अर्थ में 'बोध' का द्योतक है और संस्कृत 'बुध्यते' (प्रा० बुज्झ, हिन्दी 'बूझ') से व्युत्पन्न है। 'सुन' के अर्थ में "बाणासुरकथा" और 'सुखदुःखमोहमायाजाल चरितम्" में 'शुन' और 'बुज्ज' दोनों शब्दों का प्रयोग मिलता है। 'शुन' शब्द का प्रयोग कब और कैसे अप्रचलित हुआ यह स्पष्ट नहीं।

शेख नूरुद्दीन की भाषा ग्राम–गिरा है, लोक-जीवन से अत्यन्त निकट से सम्पृक्त ! उस युग के सामान्य ग्रामवासो की दैनिक बोलचाल की भाषा बहुत कुछ वैसी ही रही होगी। जैसा पहले रहा गया है, उसमें सस्कृत मूल के शब्दों की प्रचुरता कश्मीरी भाषा के उद्भव और विकास की गुत्थी सुलझाने में सहायक हो सकती है। उस पर यह आरोप तो नहीं ही लगाया जा सकता, जो ग्रियर्सन ने शितिकण्ठ के 'महानय प्रकाश' की भाषा पर लगाया था, कि यह तो पण्डित मण्डली की भाषा है— शेख संस्कृत पढ़े–लिखे नहीं थे।

हर भाषा की अपनी विशिष्ट संवेदना, अपनी संरचनात्मक विशेषताएं, अपना मुहावरा, अपनी अर्थच्छवियाँ हुआ करती हैं। दूसरी भाषा में इस सब को पूर्णतया संप्रेषित करना सरल कार्य नहीं। शेख नूरुद्दीन के पदों का हिन्दी में अनुवाद करते समय शताब्दियों की भाषिक परतों को चीर कर मध्ययुगीन कश्मीरी की अर्थच्छायाओं को पकड़ने प्रयास करना पड़ा है। शेख द्वारा प्रयुक्त अनेक शब्द आज सर्वथा अप्रचलित हो गये हैं। अनेक शब्द "ऋषिनामों" और "नूरनामों" के उपलब्ध हस्तलेखों में कश्मीरी ध्वनियों को फारसी लिपि में शुद्ध रूप से व्यक्त न कर पाने और लिपिकों द्वारा काफी असावधानी से लिखे जाने के कारण अपने सही रूप में नहीं मिलते। काफी प्रयत्न के बावजूद भी ऐसे सभी शब्दों का अर्थ और शुद्ध रूप स्थिर नहीं किया जा सका अतः उन अनेक पदों को जिन में ये शब्द आये हैं, अनुवाद के लिए लिया नहीं जा सका। शेख के कलाम का न तो अब तक वैज्ञानिक ढंग से पाठशोध ही हुआ है, न अर्थ-निर्धारण का प्रयत्न ही। अनुवाद के साथ-साथ इस दिशा में भी मुझे प्रयास करना पड़ा जिसमें, अनेक सीमाओं के कारण, सब कहीं सफलता ही मिली हो, ऐसा मेरा दावा नहीं। जहाँ तक हो सका संदर्भ को ध्यान में रखते हुए, अनेक स्थलों पर अनुमान का आश्रय लेकर भी, अर्थ के निकटतम पहुंचने की कोशिश की गयी है। कवि द्वारा प्रयुक्त कृषि-कर्म सम्बन्धी शब्दावली को आज के कश्मीरी कृषकों द्वारा प्रयुक्त भाषा के प्रकाश में समझने का प्रयास किया गया।

शेख नूरुद्दीन की भाषा की भंगिमा बहुत कुछ वही है जो लल्लेश्वरी की, अतः लल्लेश्वरी के पदों की भाषा से भी कुछ शब्दों के अर्थ-निर्धारण में सहायता ली गयी।

यहां एक समस्या उठ खड़ी हुई। शेख और लल्लेश्वरी के अनेक पद परस्पर गड्डु-मड्डु कर दिये गये है और वैज्ञानिक पाठानुसंधान के अभाव में यह स्थिर नहीं किया जा सका है कि कौन पद किसके हैं। मुहम्मद अमीन कामिल ने सुझाया है कि जो पद पूर्णतया तुकान्त रूप में 'ऋषिनामों' या 'नूरनामों' में उपलब्ध हो लेकिन लल्लेश्वरी में तुक का निर्वाह जिसकी सभी पंक्तियों में नहीं मिलता हो, उसे प्रामाणिक रूप से शेख नूरुद्दीन का मान लिया जाए। कामिल का कहना है कि ग्रियर्सन ने शेख नूरुद्दीन के अनेक पद "लल्लवाक्यानि" में लल्लेश्वरी के नाम से संग्रहीत किये हैं। कामिल के अनुसार लल्लेश्वरी के 'वाक्' राजानक भास्कर के संस्कृत अनुवाद तथा ग्रियर्सन द्वारा उनके संग्रह-सम्पादन से पूर्व मौखिक परम्परा से उपलब्ध थे अतः उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है जबकि शेख नूरुद्दीन का कलाम काफी समय से लिपिबद्ध रूप में प्राप्य है, अतः प्रामाणिक है। लेकिन, जैसा स्वयं कामिल साहब भी मानते हैं, "ऋषिनामों" और "नूरनामों" का उद्देश्य "नुन्द ऋषि" के कलाम को सही रूप में सुरक्षित रखना न होकर केवल रचयिता के व्यक्तित्व को चामत्कारिक महिमा से मण्डिल करना रहा है। फिर, यह कलाम जिन हस्तलेखों में मिलता है उनकी प्राचीनतम उपलब्ध प्रति भी शेख की मृत्यु के दो-ढाई शताब्दी बाद की है। इस बीच वह भी मौखिक परम्परा से ही चला आ रहा था और उसमें बहुत अंश प्रक्षिप्त भी है—इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता। अनेक संग्रहीत पद तो शेख नूरुद्दीन के न हो कर साफ सदुर मोज्य और जयद्यद के हैं, कुछ कवि के शिष्यों के भी हैं। लल्लेश्वरी

की मृत्यु के समय शेख तरुणावस्था को प्राप्त हो चुके थे। तत्कालीन समाज में एक संत और कवयित्री के रूप में लल्लेश्वरी की काफी प्रतिष्ठा थी। स्वयं शेख उनसे इतना अधिक प्रभावित थे कि उन्हें अपने एक पद में उन्होंने अवतार तक घोषित कर दिया है! ऐसी स्थिति में "ऋषिनामों" और "नूरनामों" में लल्लेश्वरी के कुछ पदों का आ जाना बहुत सम्भव है। शेख नूरुद्दीन से सम्बद्ध किये गये कई पदों में साफ लल्लेश्वरी की छाया देखी जा सकती है। इसी भांति लल्लेश्वरी से सम्बद्ध अनेक पद कवयित्री द्वारा रचित नहीं जान पड़ते। तुक के आग्रह पर इस प्रकार के पदों के मूल रचयिता को निश्चित करना बिल्कुल बेतुका है। न तो लल्लेश्वरी में ही सर्वत्र भिन्नतुकान्त की प्रवृति मिलती है न शेख नूरुद्दीन में सर्वत्र तुक का शपथपूर्वक प्रयोग! दोनों कवियों की भाषा की आन्तरिक संरचना, संवेदना और मूल मुहावरे में सूक्ष्म अन्तर अवश्य है, जिसे पकड़ पाना असम्भव नहीं। उदाहरणतया जिन पदों में 'यार' शब्द का प्रयोग है, उनकी लल्लेश्वरी के होने होने की सम्भावना बहुत कम है क्योंकि वह सूफी कवियों का शब्द है; लल्लेश्वरी 'शिव' अथवा 'पंडित' का प्रयोग करती हैं। इसी भांति शैव-साधना-पद्धति से सम्बन्धित शब्द जहाँ मिलते है, वहाँ लल्लेश्वरी को ही मौलिक रचयिता माना जा सकता है। दोनों कवियों की दृष्टि, प्रकृति और प्रवृत्ति के मौलिक अन्तर को लेकर भी यह पहचान स्थिर की जा सकती है।

प्रस्तुत अनुवाद में ऐसे अनेक पदों को लिया गया है जिन्हें परम्परा लल्लेश्वरी के मानती है पर जो शेख नूरुद्दीन के साथ

भी सम्बद्ध किये गये हैं। लेकिन जिन पदों का मूल स्वर असंदिग्ध रूप से लल्लेश्वरी का है, उन्हें रहने दिया गया है।

शेख नूरुद्दीन के नाम से बहुत से ऐसे पद "ऋषिनामों" और "नूरनामों" में मिलते हैं जिन्हें उनके "पंडिती" (पंडिताऊ) तथा "संस्कृती" (सस्कृतनिष्ठ) कलाम की संज्ञा दी गयी है। इस कलाम का अवलोकन करने पर मुझे न तो पंडिताऊपन नज़र आया और न संस्कृत के तत्सम् शब्दों की भरमार। अनेक स्थलों पर कुछ ऐसे विचित्र शब्दों का प्रयोग मिजता है जिनका सिर-पैर कुछ स्पष्ट नहीं, यथा–रुमीखम, गनावारी, पाशक, अतचही आदि! बल्कि यह सारे का सारा कलाम ही अस्पष्ट है! हो सकता है मौखिक परम्परा से प्राप्त होने के कारण लिपिकार अनेक शब्दों का सही रूप फारसी लिपि में लिप्यंतरित करने में असमर्थ रहा हो और उनका रूप ऐसा बिगड़ गया हो कि मूल रूप पहचानना असंभव हो गया। यह भी हो सकता कि यह सब का सब कलाम प्रक्षिप्त हो। शेख नूरुद्दीन के जीवन के विषय में जो भी तथ्य उपलब्ध हैं उनसे पता चलता है कि शेख अधिक पढ़े-लिखे न थे और पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति उनके स्वभाव के साथ मेल नहीं खाती थी।

इसी प्रकार वज़ू, विभिन्न समय की नमाज़, गुसल आदि की महिमा का वर्णन करनेवाले पद भी शेख़ नूरुद्दीन के लिखे बताये जाते हैं। धार्मिक बाह्याचारों को गौण मनाने वाले शेख इन विषयों पर पद्यरचना करेंगे–विश्वास नहीं होता। जिस तरह कबीर के अनुयायियों ने दाँतुन और शौच-क्रिया तक के मंत्र कबीरवाणी में सम्मिलित किये हैं, संभवतः उसी प्रकार शेख के अनुयायियों ने इस कलाम पर उनकी छाप लगा दी। जो हो, ऐसे

कुछ पदों का अनुवाद लिए चुना गया है जिनमें नमाज़ आदि का महत्त्व वर्णित है ।

वस्तुतः अनुवाद के लिए शेख नूरुद्दीन के पद्यों का चयन करते समय प्रयत्न यह रहा है कि उनके प्रतिनिधि कलाम से कश्मीरी-इतर भाषा-भाषियों को परिचित कराया जाए । इसमें वे पद भी सम्मिलित हैं जो काव्य-मूल्यों की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं और वे भी जो कवि के धार्मिक विश्वास-विचारों का संकेत दे सकें । ऐसे अनेक पद्यों को छोड़ दिया गया है जिन्हें अनुवाद की भाषा की प्रवृत्ति के अनुकूल ढाला नहीं जा सका या जिनका अर्थ किसी भी तरह स्पष्ट नहीं हो सका । अनुवाद मुख्यतया भाव या विचार को केन्द्र में रखकर किया गया है, शब्दशः भाषान्तर की नीति नहीं अपनायी गयी ! हाँ, अनेक स्थलों पर मूल में प्रयुक्त किया गया है, पर उसी सीमा तक जहाँ वे आरोपित नहीं जान पड़ते ।

अनुवाद पद्य में इसलिए किया गया है कि कश्मीरी-इतर भाषा-भाषी लोग मूल के-से रस का आस्वाद ले सकें । इसी उद्देश्य से जहाँ भी संभव हुआ, मूल की-सी लय और छन्द का प्रयोग भी किया गया है। कश्मीर के इस महान संत कवि का कवि-व्यक्तित्व प्रस्तुत अनुवाद में कहाँ तक प्रतिच्छायित हो पाया है, यह निर्णय अनुवादक का नहीं हो सकता, पर इतना वह अवश्य कहना चाहता है कि अपने ढंग का यह पहला प्रयास है । दिक्कतों का विवरण देना वह इसलिए व्यर्थ समझता है कि चुनौती को स्वयं उसने स्वीकार किया था ।

—शशि शेखर तोषखानी



कृपा करेगा तू : फूलों की पंक्ति खिलेगी !
मेरे लिए जहर भी मिश्री हो जायेगा !
कोप करेगा अगर : भला मैं क्या कर सकता ?
माँस करे प्रतिवाद छुरे का–संभव है क्या ?

[१]

हाथ–पाँव मैं रहा मारता लाख :
किसी ने हाथ न पकड़ा !
सभी रहे बस करते खाली बात :
लाज ने मुझको जकड़ा !
दिया किसी ने नहीं कभी कुछ और—
न दृष्टि रही पर-धन पर !
समझा मैंने यही कि यह संसार–
शून्यवत् है, क्षणभंगुर !

[२]

मैं चला घूमने बागीचों में, बाड़ों में
पर उम्र गयी सब बीत कँटीले झाड़ों में !
मैं चारों प्रहर अगर रह पाता जागरूक
शायद मेरा भी लिखते नाम सितारों में !

[४]

---

१ रात के चार प्रहरों से तात्पर्य है ।

नकली वत्स न स्वाद दूध का
भैंस न जाने कोमल पात !
बन्दर क्या जाने चन्दन तरु ?
यम क्या जाने दिन औं' रात !
[४]

●

मोती का बस मोल जानता गोताखोर
कहाँ सेतु का रास्ता है : क्या जाने ढोर ?
मशल काठ की कद्र दिये की क्या जाने ?
मक्खी क्या जाने है गति परवाने की ?
[५]

●

हीरे मिलते हैं नहीं झाड़–झँखाड़ों में
जालों में पाखी नहीं सुनाते बोल कभी !
बालू में तो नर्गिस न कभी खिल पाती है !
है जहां कांच का क्रय-विक्रय होता रहता
उस जगह न होता रे मोती का मोल कभी !
[६]

●

क्या दन्तहीन पाकर अखरोट करेगा ?
क्या कर सकता है धनुष-बाण का लूला ?
सोने की खाल मिले कुत्ते को—तो क्या ?
क्या नयनहीन को ले पद्मिनी करेगी ?
[७]

●

क्या करे सात गज चुनरी लेकर वामा ?
नकटी बेचारी क्या पहने नक—बेसर ?
गणिका क्या करे भला जप-माला लेकर ?
पगली पलंग को पाकर कहो करे क्या ?
[८]

●

मरवाहे की डाली से जाती गन्ध नहीं
कुत्ते के चमड़े से न कपूर निकलता है !
मन में कर उसका ध्यान, सहज वह खुश होगा
यों गीदड़-सा चिल्लाने से क्या मिलता है ?
[९]

●

दुनिया है मिली अरे दुनियादारों को
मत गँवा गाँठ की, गिन मत दीनारों को !
प्रभु को सुमिरेंगे, श्रेय वही पायेंगे
औ' नैया अपनी पार लगा जायेंगे !
[१०]

●

नहीं रहेगा जाड़ा और न गर्मी के दिन
नहीं रहेगा खग-कूजन से मुखरित सावन
सुख न रहेगा सदा, रहेगा सदा न रोदन
नहीं रहेगा सदा अरे गायन औ' वादन
[११]

●

नदिया से हिमवायु बहे औ' हो नंगा तन
ऐसे भी तो दिन आते हैं अरे नसर ![1]
पास लुगाई, गर्म रज़ाई में दुबका तन
ऐसे भी तो दिन आते हैं अरे नसर !
पतला दलिया औ' फीके शाकों का भोजन
ऐसे भी तो दिन आते हैं अरे नसर !
गर्म भात का भोज और मछली का सेवन
ऐसे भी तो दिन आते हैं अरे नसर !
[१२]

●

मैदानों में तू होगा घोड़े पर सवार
तो कभी नाव में कर लेगा तू नदी पार !
तू अगर आज गिरि शृंगों का हिम रौंदेगा
तो तप्त-तवे की गर्मी भी कल झेलेगा !
[१३]

●

केवल तन पर मांस चढ़ाते मत जाओ
मन का फूल दबेगा काया के नीचे !
अरे नसर बाबा, कुछ रोओ, कुछ तड़पो
सत्य तभी लेगा निज छाया के नीचे !
[१४]

●

---

१. बाबा नसरुद्दीन : शेख नूरुद्दीन का प्रमुख शिष्य

मन मछली है, इसे न सूखे में डालो
पिला 'ज़िक्र' [1] का पानी इसे जलाओ तुम !
अरे 'नफ्स' [2] को रतन समझलो, मत फेंको
और इस तरह साहब अपना पाओ तुम !
[१५]

●

अनलपान करना कि चबाना कण्टकफल
साग और पातों का कर लेना आहार
हद में रहना और न मद में बह जाना
यों अपने को कर लेना भवसागर पार।
[१६]

●

वन में हैं वानर–श्रृगाल तो—
गुहा बीच चूहों का वास !
पाँच समय जो अन्तर का मल—
दूर करें [3], वे प्रभु के पास !
[१७]

●

---

१. नामोच्चारण द्वारा अल्लाह को याद करना।

२. पेट, सांसारिक आवश्यकताएं।

३. पाँच समय की नमाज से तात्पर्य है।

बुलबुल ढूँढे पुष्पित बगिया
औ' चिमगादड़ शून्य निवास
सिंह–शृगाल वनों को ढूँढें
ढूँढे गधा लीद और राख !
[१८]

सदा बटोरा मैंने बस सोना–चाँदी
सदा रहे करते, सब मुझको बन्दगी !
सदा सिया, काटा औ' मापा ही मैंने
और अन्त में सिर्फ शर्म ही हाथ लगी !
[१९]

लोभ और मन्मथ को जिनने मारा है
वही तितिक्षावान 'दास' कहला सकते
सहज भाव से जिनने साहब को ढूँढा
वही जानते हैं—है सब कुछ क्षार यहाँ !
[२०]

अरे तितिक्षा वज्रपात, बिजलियाँ कड़कना
बीच दुपहरी में सहसा छाना अंधियारा !
अरे तितिक्षा चक्की से खुद को निकालना
अरे तितिक्षा तो है कण्टकफल खा लेना

पर्वत को अपने कन्धों पर रखकर ढोना
बीच हथेली पर रखना जलता अंगारा !
[२१]

●

रस्सी कौन रेत की बट सकता भाई ?
पानी की रेखा पर नाव चला सकता !
कौन मूँड सकता है भला हिमालय को
माथे की रेखा को कौन मिटा सकता ?
[२२]

●

खुदा एक है लेकिन उसके नाम लक्ष हैं
बिना 'ज़िक्र' के यहाँ कहीं तृण एक नहीं है।
एक पक्ष भी उस का जानो, उम्र लगेगी !
रोज़ी जिसे न दी उसने–कृमिकीट कहीं हैं ?
[२३]

●

खुदा सदा था और सदा ही खुदा रहेगा
उसका कभी न अन्त अरे आने पायेगा
हर प्राणी को वही जीविका देने वाला
उसे याद हम, पर हमको वह याद नहीं है !
[२४]

●

मानेगा अद्वैत : कहीं तू नहीं रहेगा !
इसी भाव ने है प्रकाश कितना उपजाया
बुद्धि और चिन्तन भेजेगा कहाँ वहाँ तू ?
कौन, अरे भाई, उस दरिया को पी पाया !
[२५]

●

ध्यान न जाता उसका बाह्याचार पर
जाती उसकी दृष्टि हाल के ही उपर !
ज़िक्रे हक़ कर, जीभ लगा तू तालू से
राजहँस आयेगा जाल बीच खिचकर !
[२६]

●

उसको सब भुवनों, छहों दिशाओं में ढूँढा
पर कहीं न उसका पता-ठिकाना लग पाया
मैंने मुल्लाओं–पीरों–नबियों से पूछा
सुनकर भी तो उनकी न समझ में कुछ आया
तब मैंने उसकी खोज ध्यान में कर डाली
औ' सिर्फ वही दीखा—मैं कहीं न रह पाया !
[२७]

●

जो कि यहाँ था, वही वहाँ है
सभी कहीं उसका अधिवास !

वही पदातिक, वही रथी है
सब कुछ वह, छिप करता वास !
[२८]

●

पतवार विना बोहित को पार लगाया
मद-लोभ-मोह सब को वश में कर आया
खोजा मैंने साहब को सहज हृदय से
औ' यों अपनी आत्मा का परिचय पाया !
[२९]

●

रन्दा देना व्यर्थ अरे तन के कुन्दे को
मन का मैल न तेरा इससे छूट सकेगा !
इस माला से, डण्डे से या इन चिथड़ों से—
इन फन्दों से साहब कभी न हाथ लगेगा !
[३०]

●

सौदा आया था करने इस देह का
आ भटका लेकिन कैसे बाजार में ?
देखो कैसे काम-धाम सब कुछ छूटा,
क्या पाया जो आया इस संसार में ?
[३१]

●

कच्चा धागा टूटा मुक्ता–हार का
पार न पाया, आह, नदी की धार का !
जीते जी किस अंधकार में आन फंसा ?
क्या पाया जो आया इस संसार में ?

[३२]

●

धरा न कान बड़ों–स्वजनों की बातों पर
सब का किया मज़ाक–बचाये कौन मुझे ?
पुण्य अल्प हैं, पापों का है ढेर लगा
क्या पाया जो आया इस संसार में ?

[३३]

●

मैं अगर जानता यह दुनिया तो भ्रम है
तुमको नमता, पहचान तुम्हीं से करता
तुम चाल चले—मुझको तृष्णा दे डाली !
पर क्या पाया ? अब एक तुम्हारी आशा—
तुम हो सब कुछ हो, शेष सभी क्षण-भंगुर !

[३४]

●

घर–द्वार छोड़ कर मैंने भस्म रमायी,
मुँह रंग डाला : पहचान सको तुम जिससे
यह जग निर्दय, मुझको न रास आता है

अब यही कामना है बस मेरे मन में—
स्वीकार मुझे कर लो, हूं दास तुम्हारा !
लौटूँगा, सुनो, तुम्हारे दर के आगे !

[३५]

●

दिन में मैंने सौ बार नमाज़े शुक्र पढ़ी
औ' रहा रातभर भी बस यों ही जागता
इस पर भी तुम करलोगे अगर कबूल नहीं,
कुत्ते–सा आऊँ पीछे–पीछे भागता !

[३६]

●

मैं अकेला, पास मेरे यार होता
यार होता पास, उसके संग चलता
उसे जो देखूँ न गुल भी खार होता
जहाँ मेरा यार, मेरा वहीं मक्का !

[३७]

●

वह है मेरे पास और मैं भी हूं उसके पास में
उसके ही ढिग बैठ आह बस आया मुझे करार है
(समय गँवाया) ढूँढा मैंने व्यर्थ उसे परदेश में
मेरे ही तो देश अरे वह आया मेरा यार है !

[३८]

●

खीमे के बाहर रहा प्रतीक्षा में उसकी
निज अश्रु-स्वेद में डूब-तैर उसको ढूँढा !
कानों में पड़ा रबाब शब्द-सा कुछ मेरे
बदले कबाब के दिया माँस अपने तन का !
मद्धम का, सम का सब्र राग में रहा कहाँ
निज सूझ-समझ से मेंने अमृत-रस चाखा !

[३९]

●

देखा है दिन के प्रकाश में, कैसे कहूं अंधेरे में ?
कैसे कहूं कि 'बिच्छू बूटी है' गुलाब की डाली को ?
भाई कैसे बन्द करूँ, मैं अपने-हृदय किवाड़ों को ?
जोड़ूँ भी तो कैसे जोड़ूँ, कहो काँच को सोने को ?
खुदा मिला मुझको भाई, मैं इसे छिपाऊं तो कैसे ?
अरे हुआ यह तो गँठ-बन्धन है प्राणों का प्राणों से

[४०]

●

क्या सत्य छोड़ कुछ और हाथ आयेगा ?
उलझी है अरे सूत की ढेरी मेरी !

[४१]

●

आया किसलिए कि क्योंकर मैं जाऊँगा ?
साहब, जीना भी मुझे हुआ लाँछन-सा !
फिर भी रहमत तेरी तो बरसेगी ही
चिड़िया पी ले, जल घटता है नदिया का ?

[४२]

●

मुरगा उड़ जायेगा, पिंजड़ा छूटेगा
"हा-हा" कर आखिर मुझे लोग रोयेंगे,
आरवल कलिका-सा तन विवर्ण यह होगा
तू भार दूर कर, पाप निवार खुदाया !
[४३]

●

इस विकट, घोर कलिकाल बीच भी मैंने—
हँसिनी सदृश है पार किया (भवसागर) !
अब विनती यही 'नुन्द' को तुझ से प्रभुवर !
तू भार दूर कर, पाप निवार खुदाया !
[४४]

●

पहले जायेंगे प्राण, लोभ तब पीछे
दो के होंगे पथ भिन्न : शून्य सब होगा !
जो पहले देगा, वही बाद में लेगा
तू भार दूर कर, पाप निवार खुदाया !
[४५]

●

क्षणभंगुर हैं रे प्राण, पवन क्षणभंगुर
क्षणभंगुर चित्त, सभी कुछ है क्षणभंगुर !
(कर लो विचार सत्वर मेरे वचनों पर)
तू भार दूर कर, पाप निवार खुदाया !
[४६]

●

तू कहाँ चल पड़ा एक-अकेला, कह दें,
बच्चे-बाले, गृहभार सभी-कुछ तज कर ?
अपने पापों का बोझ रखेगा किस पर ?
तू भार दूर कर, पाप निवार खुदाया !
[४७]

तू सकल कारणों का कारण है मुझको,
कर त्राण आज, तप रहा तपोवन में हूं !
मैं पांच बार प्रभु, नमन करूँगा तुझको
ओ मेहरबान, मैं करता याद तुझे हूं !
[४८]

ओ निगुर्ण[1], दर्शन अपने तो देता जा
तेरा ही तो मैं नाम-स्मरण हूं करता
भगवान मुझे कैलास[2] बुला ले अपने
ओ मेहरबान, मैं करता याद तुझ हूं !
[४९]

१, व २. "निगुर्ण" और "कैलास" शब्दों का प्रयोग मूल में भी किया गया है और विशेष रूप से ध्यातव्य है। जायसी भी "कैलास" का प्रयोग स्वर्ग के लिए करते हैं—"कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू" !

वह तो है सब से बड़ा, श्रेष्ठ, पैगम्बर[1]
तूने तो प्रथम 'रहस्य' उसे बतलाया
औ' शुद्ध हृदय से उसे स्थान दिलाया
ओ मेहरबान, मैं करता याद तुझे हूँ!
[५०]

भव में मैंने केवल विष ही विष पाया
इसलिए वनों में तुम्हें खोजने आया
भगवान, हुए तुम प्रकट प्रथम ऋषि सम्मुख[2]
ओ मेहरबान, मैं याद तुम्हें करता हूँ!
[५१]

प्रभु, सभी स्थानों पर, प्रत्येक दिशा में
सब लोग तुम्हीं को नित्य नमन करते हैं।
हूं शिष्य, कि मेरे भी सहाय होओ तुम,
ओ मेहरबान, मैं याद तुम्हें करता हूँ।
[५२]

जब मृत्यु गरजती सम्मुख आ जायेगी
तब ही इस मन का अंधकार भागेगा!
भगवन्, मैं सच्चे मन से हूँ अति-लज्जित
ओ मेहरबान, मैं याद तुम्हें करता हूँ!
[३३]

१. व २. हज़रत मुहम्मद

साहब बुलन्द है तुझ-सा और न कोई
आता न मुझे,-क्या करूँ बन्दगी तुझको ?
चीथड़ों बीच जन्मा हूं, मैं क्या मांगू ?
बस यही कि दे कुछ रूखी-सूखी-बासी !
औ' मुझ पर अपनी सरल और पहचानी—
तू दृष्टि सदा ही रखना यहाँ बनाये !
[५४]

●

जिसको तू दे छीन नहीं सकता कोई
हो कोई भी घड़ी मुहूरत कैसा भी !
जिससे तू ले, दे सकता है कौन भला ?
क्या कर सकते जाति-वंश-पौरुष-विद्या !
[५५]

●

कुछ को दिया यहाँ कि वहाँ भी
कुछ को न यहाँ, न वहाँ !
कुछ को दिये हार हीरों के
कुछ को प्रकाश में भी तम दिया !
[५६]

●

क्या करूं ? करूं क्या ? अंग-अंग यह देह घुली
बढ़ गये पाप इतने कि कहो कैसे उबरूं ?

मीठा-मीठा जो रहा हड़पता,-ज़हर बना
जल रहा दाह में हूं, किसके सिर दोष मढ़ूं ?

[५७]

●

घन-वन के भीतर जाकर मैं तप करता
करता मैं आहार साग का—पातों का !
उमड़े हुए क्रोध को अपने वश करता
ऐसा जो करता मैं तो क्योंकर मरता !

[५८]

●

कल तुझे बीच मैदान गाड़ आयेंगे
औ' साथ न तेरे कोई भी जायेगा
है तुझे निभानी अपनी स्वयं वहाँ पर
ओ रे मन मेरे चेत, चेत तू सत्वर !

[५९]

●

है तृप्ति न मिल सकती तुझको खा-खा कर
खा इतना ही जिससे हो जीवन-यापन
करना कुटुम्ब का भी तो तुझको पालन
ओ रे मन मेरे चेत, चेत तू सत्वर

[३०]

●

था वही सदा, औ' वही सदैव रहेगा
तू उसी-उसीका सिर्फ नाम-स्मरण कर
वह ही तेरा सारा भय दूर करेगा
ओ रे मन मेरे चेत, चेत तू सत्वर !

[६१]

●

रस्से से, फीते से ज़मीन को माप-माप
तूने रूखा-सूखा खाया, तो पाया क्या ?
तूने है जो कि कमा कर लाया "घास-पात"—
सब व्यर्थ ! किसलिए ? समझ तुझे कुछ आया क्या ?

[६२]

●

तू समझ-सोचकर चला : फलेगा-फूलेगा
सब किया-कराया डूब अन्यथा जायेगा
यौवन होगा बेकार, बुढ़ापा अर्थहीन
लाठी बिन अन्धे ! राह कौन दिखलायेगा !

[६३]

●

उस की क्रिया-साधना का क्या लाभ अरे
हाथ पसारे जो नित औरों के आगे !

[६४]

●

अभी ओस पड़ती देखी तो
देखा पड़ते अभी तुषार !
देखा अभी पाख अंधियारा
अभी ज्योति का पारावार ।[1]

[६५]

देखी अभी मन्दगति नदिया
देखा अभी : न सेतु, न कूल !
देखी पुष्पित लता अभी तो—
देखे काँटे और न फूल ![2]

[६६]

देखा अभी, सुलगता चूल्हा
देखा अभी : न धुँआ न राख
अभी पाँडवों की माँ थी तो
अभी कुम्हारिन का था वेश ![3]

[६७]

१, २ और ३. इन तीनों पदों को लल्लेश्वरी द्वारा रचित भी माना जाता है। इनमें से अंतिम पद में पाँडवों के अज्ञातवास की ओर संकेत है, जब, कश्मीरी जनश्रुति के अनुसार, कुन्ती को कुम्हारिन का वेश धारण करना पड़ा था। "पाँडवों की माँ" के उल्लेख के कारण यह तीनों पद लल्लेश्वरी के होने की अधिक संभावना है।

तूने जो वादा किया हुआ है भाई
अच्छा होगा जो उसे निभा पायेगा !
औ' यह जो अपना गधा खुला छोड़ा है
केसर की सारी बगिया चर जायेगा !
हो जहाँ नग्न तन पर करवाल बरसती
है कौन पीठ पर जो कि वार खायेगा ?
मरने से पहले अगर मरेगा रे तू[१]—
तो मरने पर ऊँचा रुतबा पायेगा !

[६८]

भूखा आये तो भर-भर पात्र उसे दो
नंगे से उसकी जाति कभी मत पूछो
दो : और हज़ारों गुणा सवाब बटोरो
तुम पाप करोगे, हासिल क्या आयेगा ?

[६९]

फूलों से भर आयी यौवन-लतिका तेरी
फल लगा ढेर-सा, हाथ मगर कुछ आया क्या ?
तू भूला पांच नमाजें, रहा हड़बड़ी में
अब मृत्यु प्रतीक्षा में बैठी : कब तू आये।

[७०]

---

१. कवि का तात्पर्य अहं की मृत्यु से है।

दाढ़ी काली थी और नया था तन तेरा
जब तुझ पर छायी थी रे यौवन की मस्ती !
तेरी केसर की क्यारी में बो गया भंग—
यह कौन ? कि किसने रक्त मिलाया भोजन में ?
लोभी नज़रों को तेरी यह किसने बरजा ?
खोया तूने बाज़ार बीच क्यों अपना पथ ?
[७१]

●

जल गया तुम्हारा दामन जलते शोलों से
दिन सार्थक फिर भी नहीं तुम्हारा गिना गया
अब कठिन पूस की आँधी में बह जाओगे
फूलों-पत्तों से हीन तुम्हारा तरु होगा !
[७२]

●

सब खट्टा–मीठा–कड़वा और कसैला—
खा लेता हो जो—खूने—जिगर तक अपना !
जिसने हर हालत में कर लिया गुज़ारा
बस वही सिर्फ उस नगरी में जा पहुंचा !
[७३]

●

टूटी नौका में ऊब-डूब करता आया
अब भँवर लील लेगा कि किनारे पहुंचूँगा ?
[७४]

●

आता है तेरे पास न कोई बिना स्वार्थ
(इतना उदार होगा किसका इस जग में उर ?)
जन्नत के लालच से या दोज़ख के डर से
करते हैं तेरी लोग इबादत, हे ईश्वर !
[७५]

साहब, कुछ का तेरी ओर लगा मन लेकिन—
कुछ को यहाँ तुच्छ लोभों ने भटका डाला !
कुछ के लिए कब्र है सिर पर पुष्प सदृश तो—
कुछ के लिए भयावह अंधकूप है काला !
[७६]

साहब बैठा महाजनी दूकान पर
सभी कह रहे हैं, "हमको कुछ दीजै जी" !
रोक न कोई और न चौकीदार यहां
जिसको जो चाहे खुद आकर लीजै जी !
[७७]

साहब दिन एक यहाँ दौरे पर आयेगा
औ' नष्ट-भ्रष्ट कर यह संसार मिटायेगा !
टुकड़े-टुकड़े हो, भू-अम्बर गिर जायेंगे
पर रहम न होगा, तरस नहीं वह खायेगा !
[७८]

किसलिए चौकड़ी अरे हिरण-सी भरता तू
क्या तुझको तनिक न याद मरण की घड़ी अरे !
पर्वत पर है तू मस्त : गड़ेगा मिट्टी में
किसलिए इमारत करता ऊँची-खड़ी अरे ?
अगला-पिछला हिसाब सब माँगा जायेगा
उत्तर में सूझेगी क्या कोई कड़ी अरे ?

[७९]

तुम रोज़े-महशर[1] कहो करोगे क्या आखिर ?
होंगे घबराये वहाँ अरे सब आम-खास !
बेटों को बाप न पूछेंगे उस रोज़े-कहर
पीरों-नबियों पर तक छायेगा वहाँ त्रास !

[८०]

नीचे है खाई औ' ऊपर तुम नाच रहे !
ओ भाई, कह दो किसका तुम्हें भरोसा है ?
क्या तुम्हें अज़ाबे-कब्र डराता नहीं तनिक ;
कह दो भाई, कैसे रुचता है अन्न तुम्हें ?

[८१]

१. क़यामत का दिन

हाथ भर दूर सर्प से भागो भाई
सिंह से दूर कोई कोस-भर भागो !
दूर-ही-दूर भगो धर्मध्वजाधारी से
मौत से दूर न किन्तु निमिष-भर भागो ![1]
[८२]

●

काल सिंह है उससे दूर कहाँ भागोगे ?
झुण्ड बीच वह खींच पकड़ ले जायेगा ही
शरबत है रे मौत, पिये बिन ठीक न होगे
पहले ही यह बात न क्यों तुम जान सके हो ?
[८३]

●

जिसका कि काल आया हो, सारा आलम—
रोये भी, पर क्या उसे जिला सकता है ?
ढाई गज़ धरती में जो गड़ा पड़ा हो
वह क्यों न वली हो, बाहर आ सकता है ?
[८४]

●

चल सकती है क्या मौत—मौत के तीक्ष्ण शरों के आगे ?
कैसे-कैसे जवान सम्मुख टिक सके न—उखड़े, भागे !

---

१. अर्थात मौत को हमेशा याद रखो ।

मिट्टी के नये बर्तनों में जैसे पानी पच जाता
जैसे बनिया कर बन्द पेटों को है दूकान बढ़ाता !
[८५]

●

जिस दिन दोज़ख को आग उठेगी धधक अरे
बदकारों को तब पकड़ वहाँ ले जायेंगे
अपने ही पाप पछाड़ेंगे खुद तुमको ही
तुम वहाँ कहोगे तो न, "जन्म क्योंकर पाया ?"
[८६]

●

वह ताप[1] भस्म कर डालेगा पर्वत-टीले
नाफरमाबरदारों को उसमें डालेंगे :
जन्नत के अधिकारी जन्नत में खुश होंगे
तुम वहाँ कहोगे तो न, "जन्म क्योंकर पाया ?"
[८७]

●

काम-क्रोध औ' लोभ-मोह औ' अहंकार :
ये सब देते हैं हवा को दोज़ख की
बस केवल एक सुकृत ही है आधार यहाँ
वह है कि जेब में पूँजी है, मत ज़ाया कर !
[८८]

●

---

१. नरकाग्नि का ताप

हड्डियाँ अरे अंजर-पंजर हो जायेंगी—
मैं याद तुम्हें वह अंतिम रात दिलाता हूं
यह तन चूरा-चूरा हो जायेगा, लेकिन—
'क्या करूँ, करूँ क्या ?' तुमसे कभी न छूटेगा !
[८६]

होकर मनुष्य क्यों बनते निरे गधे हो
दिन-रात गंवाये अरे व्यर्थ क्रीड़ा में !
हो मरण भूल कर अहंकार में फूले
'क्या करूं, करूं क्या ?' कभी न छूटा तुमसे !
[९०]

बलिहारी-बलिहारी उस पैगम्बर पर हम
जारी है रहमत जिसके कारण (बन्दों पर)
कल जब पूछा जायेगा सब रोज़े महशर
आशा—दृष्टि सभी की होगी एक उसी पर !
[९१]

राज सिकन्दर ताजदार ने किया, मगर क्या—
साथ ले गया (गया अरे जब इस दुनिया से) ?
तुम भी ज़रा मज़ार टटोलो सच्चे दिल से—
हम से पहले चले गये कितने हम जैसे ?
[९२]

अरे बेखबर, हुआ तुझे क्या ?
क्या न कब्र में गाड़ेंगे ?
नकीरो-मुनकिर[1] आफ़त ढायेंगे—
कि रोंगटे सिहरेंगे
पाँच नमाज़ों का ले आश्रय
वरना माँस उखाड़ेंगे !

[९३]

●

प्रेमी है वह जो कि जले प्रेमानल में
औ' उसमें से कुंदन-सा उज्जवल निकले
दर्द-इश्क में जिसका उर-अन्तर तड़पे
ऐसे ही प्रेमी को वह अनिकेत मिले

[९४]

●

प्रेम : कि ज्यों माँ का इकलौता पुत्र मरे
वह पलभर पलकें झपकाये तो कैसे ?
प्रेम : छेड़ना जा मधुमक्खियों का छत्ता
वह जन कहो भला सुख पाये तो कैसे ?
प्रेम : तीक्ष्ण करवाल-वार को सह लेना
चोट नहीं उस जन को आये तो कैसे ?

[९५]

●

१. मुस्लिम धार्मिक विश्वास के अनुसार दो फरिश्ते जो अच्छे बुरे कर्मों का लेखा प्रस्तुत करते हैं ।

प्रेम की ओखली में कलेजा दिया
दूर दुर्मति हुई, मन हुआ शान्त है
पीस डाला कि खुद ज़ायका तब लिया
अब मरूँगा ? जियूँगा ? नहीं ज्ञात है !



[९६]

आशिक है वह जो दामन पाक रखेगा
(सुन्दर हूरें उसकी सेवा–रत होंगी !)
रो-रो. आहें भर, पीत–वदन जो होगा
मुखड़ा–मुखड़ा प्रिय के सब रूप पढ़ेगा !
सब से पहले जन्नत में स्थान मिलेगा—
उसको कि प्रेम में जो रातों जागेगा !



[९७]

तू ही मेरा यहाँ, वहाँ भी—
मेरी मिट्टी कर गुलज़ार
गहा तुझे सब तज कर मैंने,
मुझे दिखा अपना दीदार ![1]



[९८]

सब कुछ छोड़ गहा बस तुमको
तुम्हें खोजते डूबा दिन !
प्राणों में पाया जब तुमको,
किया तुम्हीं से गँठ-बन्धन ![2]



[९९]

---

१. और २. दोनों पदों में मूल कश्मीरी में "म्ये-च्ये" (=मिट्टी, और मुझे-तुझे) शब्दों को लेकर श्लेष का प्रयोग हुआ है ।

औरों के तिनकों पर नित ललचाया मन
समझा खुद को पहलवान, मस्ती में तन !
सींचा सदा बबूल अरे तजकर चन्दन
जंगली मेढ़े-सा शैतान पड़ा पीछे
यही देखकर किया अहं का दमन-शमन

[१००]

मूढ़ रे, किसलिए गुहावास करता है ?
अपने ही मन से बात अरे तू कर ले !
शैतान न तेरा शील-भंग कर डाले
तब तू भी 'अबूजहल'[1] समझा जायेगा !

[१०१]

सत्कर्म, समझ ले, गुहावास करना है
हैं कौन पेट का द्वन्द्व कि जो सह डालें !
विष खाकर भी केवल वे दृढ़ रह सकते
जो वन-शाकों को निज आहार बनालें !

[१०२]

मुझको कि 'नफ्स' ने अस्त-व्यस्त कर ढाला
टूटे छप्पर-सा मेरा हाल बनाया !

---

१. परम मूढ़, जाहिल; हज़रत मुहम्मद का एक चाचा जो सदा उनका विरोध करता रहा ।

सत्कर्मों के पुल को भी तोड़ ढहाया
शैतान सटीखी गति मेरी कर डाली।

[१०३]

नफ्स मत्त कुँजर है मेरा
काबू हुआ लगा कितना बल !
बचा एक लाखों में इससे
शेष सभी को रखा कुचल कर !

[१०४]

मुझे नफ्स ने ही तो मारा
अंधकार में रहा छिपा
हाथ अगर लगता तो क्या था
रखता उसका काट गला !

[१०५]

क्रिया-साधना आह, शुरू में लगी गरल-सी
और आस्था रही किसी में नहीं तनिक भी
देह ढली जब तक, तब तक मैं चीन्ह न पाया
पर जब चीन्हा, सत्य पकड़ में मेरी आया !

[१०६]

किसने कज्जल किया समुज्जवल नूर को?
देखी मैंने उस तस्कर की छाया है
फंसा जाल में हूं अब आँखें मलना क्या
सिंह दिखाता यह श्रृगाल-मुख-माया है!
[१०७]

●

है झाड़ पुष्प का पात कुजात बड़ा ही :
उसको घोड़ा या डाँगर-ढोर न खाये!
पर वही शीश पर जब राजा के सजता
कुछ जात-कुजात न दृष्टि अरे तब आये!
[१०८]

●

दर्पन ज्यों अपने मन का मैल छुड़ा लो
उस 'जन' को, भाई, तभी जान पाओगे!
हो कैसी ग्रन्थि लगाते—रहने भी दो
तुम मरो मृत्यु से पहले—ज्ञान यही है!
[१०९]

●

जो क्षीर छोड़कर मथे नीर को खाली
उसने इस जग में जन्म लिया तो क्योंकर?
आहार करे जो वन्य साग—पात्तों का
हो गहन तपस्या-रत घन-वन में जाकर

जो नहीं जानता अपना और परांया
भव-सिन्धु पार वह सहज पर उतर जायेगा ?
[११०]

पड़ गयी हाड़ में नींद कि जब तक
आया पूस महीना !
दिन गिना काम का गया एक भी नहीं,
अकारथ जीना—
मेरा; तब चेत हुआ पर्वत-सा कठिन हुआ
जब हिलना
इतने में बोला काल : "चलो, तुमको
मेरे संग चलना !"
[१११]

मारक बाण लगा जब मुझको :
ठीक न हो पाऊँगा
फँसा जाल में ? जन्म लिया जब मैंने
इस मिट्टी पर
धोने से क्या होगा, अंतर का
क्या मैल धुलेगा ?
कल ही अरे त्वचा को मेरी
जायेगा न उधेड़ा ?
[११२]

ओ गुल अनार, ओ तन मेरे, सुन्दर हैं—
तेरे ये गाल, भुजायें शोभाशाली !
नरकाग्नि बीच पर ये जब जल जायेंगे
तब क्या होगा ? तब कहो कहां जाऊँगा ?
[११३]

ओ यौवन मेरे, अरे चाँद पूनम के !
मैं देख चुका हूं उजला मुखड़ा तेरा
वृद्धावस्था में पर चरखे के कीले
आखिर पड़ जायेंगे सब के सब ढीले !
अपनों ने तक होगा तुझसे मुँह फेरा !
[११४]

ओ रे यौवन मेरे ओ पागल हिरने !
कलमा बिन पढ़े कहो कल कैसे पायी !
बस पाँच नमाज़ें पढ़ना ही तुम भूले
बाकी सब पर किस तरह तबियत आयी ?
है जहाँ न कोई खिड़की था दरवाज़ा
उस यक्ष–गेह[1] में तुम्हें रखेंगे, भाई !
[११५]

रोगी को दारू ज्यों, उपवास[2] व्याधि को है
उपवास करेगा अगर मरेगा नहीं कभी

---

१. कब्र २. रोजा

उपवास न हो तो क्रिया-साधना व्यर्थ सभी
तू उलटी चाल चलेगा—होगा ठीक नहीं
कमनीय बाल-तन क्षण-क्षण यह होगा कठोर !

[११६]

●

आने की है घड़ी, घड़ी है जाने की
माटी है ओढ़ना, बिछौना माटी ही ?
काहे को तब बना रहे ये उच्च महल ?
यह सब किसके लिए ? अरे मरना है कल !

[११७]

●

भीति शुरू में हुई मुझे तो बड़ी बजू की, स्नान की !
जब तक हुई सफ़ेद कि सारी दाढ़ी मुझ नादान की !
जोड़-जोड़ कर लुटा दिया सब राज और तरखान में
और मृत्तिका को यों मैंने पहुंचाया आसमान में !
औ' तरखान चले जब गढ़ने चदन के ताबूत को
यह बेचारा जिस्म पड़ गया उनकी खींचातान में
नीचे मेरे मिट्टी होगी, मिट्टी ही होगी ऊपर
मुझे छोड़कर आयेंगे जब गाड़ बीच मैदान में !

[११८]

●

जिस मिट्टी से उसने आदमी बनाया
उस मिट्टी का सब रंग-ढंग, सब माया !
मिट्टी ने सभी नेमतों को उपजाया !
मिट्टी के ही पात्रों में लोग पकाते
औ' मरने पर मिट्टी में ही मिल जाते !

[११९]

●

बैल बिचारा—दाना-चारा खिला पालते
जाड़ों में
लेकिन हल में हाँक डालते
उसको पकड़ बहारों में !
बैठे तनिक कि आग छुआकर, पीठ दाग
(देते दुख घोर)
सुस्ताये तो तुरत उठाकर देते
उसका गला मरोड़ !
चले नहीं तो कोल्हू में है बाधा जाता
बेचारा
दोनों आँखों पर पट्टी रख कर देते हैं
अंधियारा
और अन्त में छुरी–कुल्हाड़ी से देते हैं
खाल उतार !
अरे मूढ़ ! किस भ्रम में है तू ?
क्षणभंगुर है यह संसार !

[१२०]

●

गाफ़िल रे होगा हैरान
छूटेगा जब तन का राग
वश कैसे होगा शैतान
हो यदि जग–जीवन का राग ?

[१२१]

कौन गया है वहां ? 'उसे' किसने देखा है ?
वहाँ पहुंच कर भी कितने पीछे हट आये
जिसने जितना आत्म-दमन है किया कि उतना–
मिला निकट पथ उसे, वहाँ तक जो पहुंचाये !

[१२२]

आ गये यहाँ, जायें तो जायें कहाँ मगर ?
था ज्ञात न मुझको बीच राह दोराहा है !
इसका हम निपट निकम्मे अब क्या कर सकते ?
चल पड़े, और बस चलते-चलते चले गये।

[१२३]

एक 'वही' तो है जो है बस पाने योग्य यहाँ पर—
अरे एक दिन हीरा भी कौड़ी के मोल बिकेगा !
हँसी उड़ानेवालों को भी जब वश में कर लोगे—
अरे आग में भी तब बाग तुम्हारा, सच, महकेगा !

[१२४]

'उसके' बाणों के आगे ढाल न करना
मुँह नहीं फेरना उसकी तलवारों से
सारा 'लश्कर' ही उसकी बलि दे देना
तब यहाँ, और हाँ वहाँ, अभ्युदय होगा !
[१२५]

●

खुश होता वह तो नमाज़ से, राज़े से—
साथ यही तो देता बस इन्सान का
होश अरे कर ले दीनो-ईमान का
वरना साथी समझेंगे शैतान का !
[१२६]

●

सुबह खिली और रात ढली, पर—
तुम क्यों देर लगाये हो ?
बाँग व. नमाज़ प्रभु अ वाहन
(वादा क्या कर आये हो ?)
फर्ज़ व सुन्नत अदा करो र
जन्नत तभी बुलाये वो !
[१२७]

●

नमाज़े शाम से दीये-सा दीप्त होओगे
पाप मिट जायेंगे, नरकाग्नि कुछ न बिगाड़ेगी !

ख़ुश बहुत हो ओगे फल की जो खबर सुन लोगे
और प्यादे से अरे पल में सवार होओगे !

[१२८]

●

हो फ़र्ज़ निभाने की यदि तुममें शोभा
तो मर्ज़ दूर निश्चय से हो जायेगा !
यदि ज़िक्र-फिक्र का लोभ रहेगा तुमको
तब कौन : होड़ तुमसे जो कर पायेगा ?
हो बाह्यकर्म से अधिक दया यदि भीतर
ईमान तुम्हारे संग-संग आयेगा !

[१२९]

●

इस आँधी में भी दिया जला जो पायेगा
औ' तेल जो कि डालेगा उसमें इल्म, दीन
तजकर कुकर्म, करना सुकर्म का पालन, बस —
है यही इल्म का अलफ़, लाम और मीम-शीन[1]

[१३०]

●

वादा जाने क्या किया कि जब मैं आया
पर आह, जन्मते ही वह लेख गँवाया !

---

१. जिन अक्षरों से 'इल्म' शब्द बना है। 'शीन' (=श) संभवतः तुक के लिए प्रयुक्त हुआ है।

चलते-चलते थक गये पांव—क्या पाया ?
आते-जाते लज्जा को सिर्फ कमाया !

[१३१]

●

जब भलों-भलों को अलग चुना जायेगा
भय है : न बुरों में कहीं रखा मैं जाऊं
जो पुल-ए-सरात[1] से अरे तारनेवाले
है उन्हीं चार-यारों[2] का मुझे भरोसा !

[१३२]

●

आँगन में कुत्ता पुकारता
"भाई मेरी भी सुन लो,
जो बोयेगा, सो काटेगा"
कहता है कुत्ता, "बो-बो !"

[१३३]

●

"पाप और पुण्य वहाँ तोलेंगे
इसका तनिक उपाय करो।

---

१. इस्लामी धर्म-विश्वास के अनुसार बाल-सा बारीक पुल जिसे हर व्यक्ति को क़यामत के दिन पार करना है।

२ हजरत अली, हजरत उमर, हजरत अबूबकर और हजरत उस्मान।

कम निकलेगा या कि अधिक रे ?"
कहता है कुत्ता, "बो–बो !"
[१३४]

●

लम्बा है रे कर्तव्य : अमल तुम कर लो
औ' (धान) कूट कर शरदकाल में भर लो
तब करो माघ में मीठे फल की आशा
जिसने हल जोता, वही फसल पायेगा !
[१३५]

●

है 'नफ्स' बैल : खूंटे से बाँधे रखो
औ' फाके की सोटी से भय दिखलाओ
यह तभी समय पर जाकर काम करेगा ।
जिसने हल जोता, वही फसल पायेगा !
[१३६]

●

पोटलियों में तू बाँट-बाँट कर रख ले
सब किस्म-किस्स का बीज कि घटिया-बढ़िया[1]
औ' फसल काट ले, रख दे छाँट-तोल कर
जिसने हल जोता, वही फसल पायेगा !
[१३७]

●

१. मूल में, "जग" और 'प्रोन', (अर्थात् कश्मीर में पाये जाने वाले लाल और सफेद किस्म के चावल) शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

कर लेगा गोड़ी वही बीज जो बोयेगा
औ' चुनकर वह सब खरपतवार उखाड़ेगा
बोकर वसन्त में शरदकाल में काटेगा
यों खेत लगा कर सीधे जन्नत जायेगा !

[१३८]

करलेंगे जो वसन्त में अरे वुवाई
सुख पायेंगे वे, होगी जबकि निराई
जो याद करेंगे नाम रसूल, खुदा का
वे जन इस दुनिया में आये भी, तो क्या ?

[१३९]

सच कहना अरे आग में कुँदन बनना
औ' ज्योतिपुँज-सा दीप्तिमान हो जाना
कहना असत्य ज्यों मूढ़ सदृश हँस देना
जो बोये नहीं भला वह क्या काटेगा !

[१४०]

जो प्रथम करेगा, वह न बाद में कर सकता
जो प्रथम करेगा, साथ वही तो जायेगा
जैसा बोयेगा बीज अरे—घटिया—बढ़िया
आखिर में तू वैसा ही तो फल पायेगा !

[१४१]

जो हम से पहले हुए, उन्होंने तो तप को अपनाया[1]
यों थोथी बातें करने से हासिल किसको क्या आया ?
मरने का डर क्यों मुझपर ऐसी बुरी तरह से छाया
कचरा ही मैंने जमा किया, हासिल भी क्या कुछ पाया ?
[१४२]

●

सोचा था मैंने मित्रों के बीच रहूंगा
तप्त धातु की चादर पर यह कहां आ गया ?
स्वजनों में ? लांछनों, बैरियों बीच रहा मैं !
पत्तों को मैंने सींचा मूलों को काटा
लोभ दृगों का आ़खिर सब काफूर हो गया
सभी चले, लेकिन 'उस' तक विरला ही पहुंचा !
[१४३]

●

है घास वहां की केसर, मिट्टी है सोना
तुम करो साधना अगर स्वर्ग की चाह तुम्हें
है स्वर्ग-द्वार पर खड़ा दरख़्ते तोबी जो—
करता है सारे स्वर्ग-धाम में उजियाला !
[१४४]

●

१. पूर्ववर्ती "ऋषियों" की ओर संकेत

बहता उसके निकट एक सुन्दर-सा झरना :
उजला जैसे दूध और अमृत-सा मीठा !
वहाँ कामना फले, खिले, आनन्दित हो मन
अन्तर का भय मिट जाये पा उसके दर्शन !

[१४५]

"अल्लाह" जपने में ही समय बिताना, भाई !
ध्यान जगत की लादी का तुम तनिक न करना !
दिवस रात बस उसके स्मरण में खो जाना
यों जीवित रहना तुम औ' न कभी भी मरना !

[१४६]

ध्यान करेगा : ज्ञान जाग्रत होगा तेरा
तू प्रफुल्ल होकर विकसेगा रे, "अल्लाहू" !
अरे इधर से तू कि उधर से वह आयेगा
दिल में तेरे यदि उपजेगा रे, "अल्लाहू" !

[१४७]

'वही' सभी कुछ, स्वयं स्वयं को देखता
होता बोध न पर सोने से, खाने से !
ध्यान न देता (जो कि) कभी इस ज्ञान पर
(उस) अंधे को क्या, हो रात या कि हो दिन !

[१४८]

एक ही पिता-माता की संतानों से—
(सब भेद-भाव से दिला उन्हें छुटकारा)
दोनों से–हिन्दू और मुसलमानों से—
बन्दों से कब तू होगा तुष्ट खुदाया ? [१४९]

डण्डकवन के ज़ुल्कार रिषी[1] ने माया—
को था अपने से कोसों दूर भगाया !
था अन्न-ग्रहण का भी तो उसे न बन्धन
बन्दों से कब तू होगा तुष्ट खुदाया ? [१५०]

औ' वे जो थे 'रुम रिषी'[2] हुए, अतिपूजित
था किया स्वर्ग में स्थान जिन्होंने अर्जित
है उचित उन्हीं जैसों पर तेरी रहमत
बन्दों से कब तू होगा तुष्ट खुदाया ? [१५१]

औ' वे हजरत मीरान रिषी साहब[3] तो —
क्रीड़ा करते थे साथ नफ्स के, बस जो—
आचमन लिया करते कुछ जल-बूंदों को !
बन्दों से कब तू होगा तुष्ट खुदाया ? [१५२]

१. २. और ३. कश्मीर के "ऋषि सम्प्रदाय" के तीन प्रमुख मुसलमान "ऋषि" !

वे पिछले ऋषि सच्चे ऋषि थे
वे तो थे बस मगन-नगन !
खा लेते थे माँग मधुकरी
करते थे तप जा घन-वन !

[१५३]

पर कलियुग के ऋषि कपटी ऋषि
उनको बस खाने का ग़म !
रहें पास खासों के, मांगें
कहीं 'करम' कि कहीं शलजम !
खायें और भुलायें ये रब
ऋषि हैं ये तो चोर कौन तब ?

[१५४]

ऋषि यदि ऋषित्व का पालन करते अपने
औ' गुहावास कर लगते प्रभु को जपने
करते हैं किन्तु न वे ऋषित्व का पालन
बस सिर्फ डाह से लग जाते हैं तपने !

[१५५]

पिछले ऋषियों ने तो व्रत-नियम निभाये
इससे ही तो वे सचमुच 'ऋषि' कहलाये

नंगों को दी चादर : तन ढाँपें जिससे
पर सर्प और बिच्छू कपटी ऋषि अबके
कह अरे नसर बाबा, अंधेर क्या इससे !
[१५६]

●

वह लल्लेश्वरी पद्मपुर की, उसने तो–
(निश्चय ही से) अमृत का घूँट पिया था
वह महायोगिनी तो अवतार अरे थी
हे देव, बनूँ मैं भी वैसा ही—वर दो !
[१५७]

●

तन्दरुस्ती तो नेमत हजार है भाई,
कर शुक्र की घास की नीचे बिछी चटाई !
सुख-साज सभी हैं—कर्म भले हैं तेरे
अब यादे खुदा कर निशि-दिन भाई मेरे !
[१५८]

●

दुनिया में आये हैं सब साथी-संगी
आओ हम संग निभायें सब मिलकर ही
तुमसे पहले हैं गये पिता और मैया
पत्थर का क्यों फिर हुआ कलेजा भैया !
[१५९]

●

सुबह व शाम नमाज़ गुज़ारो
खोजो अपना 'साहब जू'
बता न जग को, मार नफ्स को
वन में उसे पायेगा तू
जग से कर ले अरे किनारा
ऐसे अपने दिवस बिता
तो निश्चित है सभी जगह से
अपने को तारेगा तू !

[१६०]

गोरे तन पर यह दाग़ लग गया मेरे
रखवाला बाग छोड़ कर चला गया रे
यह धूप हाड़ की माघ हो गयी मुझको—
हर बन्दर पर फाल्गुन ही छूट गया रे !

[१६१]

पढ़-पढ़ पड़े जीभ में छाले
लिख-लिख आयी कर में मोच
पर कुवासना गयी न मन से,
उपजा तनिक न सच्चा सोच !

[१६२]

पढ़-पढ़ पड़े जीभ में छाले
क्रिया ईश हित हुई नहीं
माला फेर गलीं उँगलियाँ
तन में बसी न बास गयी !
[१६३]

●

पढ़-पढ़ पालन करना भूला
लिख-लिख कर बस बैठा दिल !
हुआ 'ज़िक्र' से खुश मौला तो
हुआ 'फिक्र'[1] से रक्षित शील !
[१६४]

●

पढ़-पढ़कर भी रहते खाली के खाली—
वे गधे किताबों का बस बोझा ढोते
पर अपने मन को जो कि जान जाते हैं
भवसागर के हैं पार वही नर होते !
[१६५]

●

पढ़-पढ़कर जो केवल सोना जोड़ेंगे
पढ़-पढ़कर जो बेचेंगे दूकानों पर

---
१. अल्लाह का चिन्तन

नभ–चुम्बी ऊँचे महल खड़ा कर देंगे
मुट्ठी में सारी दुनिया है—समझेंगे
ऐसे बद-अक्ल अरे पशु कहलायेंगे !

[१६६]

●

पालन न करें वे, इल्म भले पढ़ डालें
उन आँखों में क्या ज्योति कि जिनमें जाले !
झोंपड़े काठ के अपने लाख रंगा लें
या सुन्दरियों में मन अपना उलझा लें !

[१६७]

●

सीखा तुमने इल्म : प्रलोभन था कि मुफ्त की
खाओगे
इसी ताक में रहे : दबोचें एक-दूसरे को छल से
छके हुए मीठे मद में हो, अतिथि देख
घबराते हो
तुम विशिष्ट हो कुछ, जाने तुमको गुमान यह
क्योंकर है
अरे वहाँ[1] तो नहीं एक भी बच पायेगा
लाखों में !

●

[१६८]

---

१. खुदा के पास

इल्म : तिजोरी में ज्यों पड़ा हुआ सोना
उचित भाव है, साधु पुरुष का सौदा है !
मोल यही—बस सच-सच सभी प्रकट करना
दीपक है ईमान—बचा लो आँधी से।
[१६६]

●

इल्म बड़ा है, लेकिन कलमा पढ़ो साथ में
दामन पकड़ो अरे मुहम्मद साहब का हो—
किया सूत्र में हढ़ मोती को लड़ियाँ होंगी
उस मुक्ता का मोल मिले जो, रखो हाथ में !
[१७०]

●

इल्म का स्रोत अरे हैं कलमे के माने
और सत्कर्मों का है मूल यहाँ अल्पाहार
'शून्य' तक पहुंचने का आत्म-ज्ञान है आधार
और सागर ? उसका न कहीं आर न पार !
[१७१]

●

पढ़ते-पढ़ते कुरान को क्यों न मरा तू
पढ़ते-पढ़ते कुरान क्यों हुआ न राख !
पढ़कर कुरान फिर जीवित अरे बचा तू !
पढ़कर कुरान तो राख हुआ मन्सूर

पढ़कर कुरान तुझको गम रहा न कोई
इतने में तुझको लूट ले गये चोर !

[१७२]

●

है दानिशमन्द अरे अमृत का सोता
वह बून्द-बून्द अमृत टपकाया फिरता !
सामने रखा करता मोटा-सा पोथा
औ' खाल बाल की नित्य उतारा करता !
बाहर से दिखलावा भीतर से खाली
औरों को नसीहत आप फजीहत करता

[१७३]

●

मुल्लाओं की पगड़ो भी क्या शानदार है
कैसे चलते अकड़-अकड़ कर इसको पहने !
पाँव ज़री की जूती डाले, तन पर चोगा
और काँख में खाने की तश्तरी पँसेरी
दुर्गम पर्वत लाँघ कमाने जाओ रोज़ी
औ' रोज़ी से मुल्लाओं को भोज खिलाओ !

[१७४]

●

माँग मुफ्त की खाओ, खूब उड़ाओ, भाई !
स्वाँग रचा घर–घर से अन्न मुफ्त का लाओ !

मुल्ला की मुर्गी ने खूब मुफ्त की खायी
श्रौर श्रन्त में सोकर ही थी बाँग सुनायी !
[१७५]

●

भीतर से मैले, बाहर–बाहर शोभा
करतूतें कर–कर अरे मंच पर जायें
उल्मा हों ता मौलाना रूमी जंसे
अन्यथा अरे मुल्लाओं से बस तोबा !
[१७६]

●

इन रुआब-खानों में खानों के मैंने
देखा यह कि भलों के लिए प्रवेश नहीं
देखीं मैंने गीत–मुखर सुन्दरियाँ जो––
झाड़ू देती थीं चँवरों से नित्य वहाँ
तात उन्हें मैंने कपास बोते देखा
मैंने देख लिया है, तू भी देख नसर !
[१७७]

●

है बेचारे गरीब का नाश सभी दिन
सब पका–पकाया सम्बन्धी खा जाते
औ' बैठ ताक में फन्दे में उसे फंसाते
कितने उससे लेकिन प्रकाश हैं पाते !
[१७८]

●

जाकर मैदान बीच गाड़ेंगे तुझको
मिट्टी में हड्डी–माँस सड़ा जायेगा
लेंगे हिसाब दाने–दाने का तुझसे
है मुसलमान को क्रोध न शोभा देता !
[१७९]

साहिब ही तो है अतिथि रूप में आता
कुछ ऐसा कर जिससे वह तुझ पर खुश हो
जो औरों को देगा सो पायेगा भी
है मुसलमान को क्रोध न शोभा देता !
[१८०]

तू क्रोध करेगा हासिल सभी गँवायेगा
तू क्रोध करेगा सुकृत सभी जल जायेगा
है क्रोध चोर तेरे मणि–रत्न खज़ाने का
है मुसलमान को क्रोध नहीं शोभा देता !
[१८१]

आँखे पर-नारी के सम्मुख न उठाना
उससे साधना राख सब हो जायेगी
उससे ईमाँ पर आँच अरे आयेगी
है मुसलमान को क्रोध न शोभा न देता
[१८२]

वह पुरुष स्वर्ग का निश्चय से अधिकारी
जिसका न किसी से कोई रगड़ा झगड़ा !
जो रहता है रोज़ों के दिन व्रतधारी
निर्भय हो नमता सिर्फ खुदा के आगे
जो लोभ – मोह – मद–अहंकार को त्यागे
वह जन ही तो है मुसलमान कहलाता !
[१८३]

●

जो अपना मूल्य न कौड़ी एक समझता
जो औरों के संग करता कभी न होड़
सर्जन को खोजे जो वर्जन को छोड़
जो दिवस–रात निज को न्योछावर करता
निज को पर को, भवसागर पार लगाता
वह, बस केवल वह, मुसलमान कहलाता
[१८४]

●

जो एक ओर हट, रूखी–सूखी खाता
है जो कि जानता मिट्टी है यह काया
संतोष, पेट को काबू कर, अपनाता
वह जन ही तो है मुसलमान कहलाता
[१८५]

●

जिसकी औरों के ऊपर नहीं नज़र हो
धन देख नहीं जो भ्रमित कभी हो जाता
औरों को जो सच्चा उपदेश सुनाता
औ' उस सब पर ईमान स्वयं भी लाता
पालन करता शरिअत, सुढंग अपनाता
वह, हाँ केवल वह मुसलमान कहलाता

[१८६]

●

चुपचाप काम दिन का अपना कर लेता
कुछ भी जतलाये बिना गुज़र जो करता
मन पर न रंच भर भी मद छाने देता
सब ऊँच-नीच, मानापमान सह जाता
वह जन ही तो है मुसलमान कहलाता !

[१८७]

●

सच कहने से तू पत्ते-सा कांपेगा
रस खूब मिलेगा तुझे झूठ कहने में
तज 'मुहम्मद' को इबलीस[1] का आश्रय लेगा
'वह' देख रहा सब, कब तक छिपा सकेगा ?

[१८८]

●

१. शैतान

थक गये अरे ये जराजीर्ण डैने अब तो
मेरे कांचन का मोल कांच का भी न रहा
भय है : अब उस पुल के ऊपर से जाना है
जिसके नीचे से नदी आग की बहती है !
[१८९]

●

था यही यतन जा पहुंचूँ किसी ठिकाने
पर बना दिया चमगादड़ इस दुनिया ने
कौए औ' चीलें दुर्गति लगे बनाने
मिलकर कि गडरिये आये मुझे फँसाने !
[१९०]

●

हो हड्डी-हड्डी गली दर्द से जिसकी
उसके कि दूध से पग धो आओ क्या ?
हो पुत्र-शोक में तड़प रहा उर जिसका
जाकर हकीम को उसे दिखाओ तो क्या ?
[१९१]

●

रो लेता दुखिया, कांपे उसका अंग-अंग
रो लेने को भी मिलता उसे न स्थान कहीं
भीतर-भीतर घुटने को हो वह क्यों न विवश
कोई हमदर्द जिसे दे दिल में स्थान नहीं !
[१९२]

●

'वह' नहीं बिकाऊ वस्तु कि सौदा कर लूँ
'वह' नहीं हाट-बाजार बीच मिलता है
यों चुभो दिया खजर अपना कि मरा मैं !
कर दिया कलेजा मेरा उसने छलनी—
दामन मेरा अंगारों से भर डाला
हर अंग गयी झुलसा मेरा वह ज्वाला
अब किसे बताऊँ उसने क्या कर डाला !

[१९३]

●

सागर की लेने थाह डांड से निकला
ऐसे में मुझको कहो मिला कि मिला क्या ?
भूखे को भोजन औ' नंगे को कपड़ा—
जो दिया नहीं मैंने तो किया भला क्या ?

[१९४]

●

बस भरा उदर ही आह, मुदित हो-होकर
जब तक हो गया अरे तन-तरु यह जर्जर
पत्ते-पत्ते में व्याप गयी जर्जरता
थे किये गुनाह, हुआ बेहद पछतावा !

[१९५]

●

मूढ़ों को देखा चढ़े तुरग पर मैंने
पर सांय-सांय सामान्य जनों के घर में !

हैं जुड़ा पेट-भर अन्न न सज्जन पाते
दुर्जन भर-भर कर मांस-पुलाव उड़ाते !
देखा : नादान सभी कुछ यहां भुलाते
कौए भी गोरे राजहँस बन जाते !

[१८६]

●

सब कहीं पूछ है बस दुनियादारों की
बढ़ती गरीब की देख, छीन सब लेते।
बन्धक न भले हो, सभी धनी को देते
बन्धक हो भी, देगा गरीब का कोई ?

[१८७]

●

नौका में या फिर तू स्थल से जायेगा ?
दुविधा होगी—तो सफल न हो पायेगा !
जब तक न काट डालेगा तू भव-बन्धन
सुख से न कभी रहने पायेगा ओ मन !

[१८८]

●

तू मूक हुआ क्यों राजहँस होकर भी
जाने कोई क्या वस्तु ले गया तेरी

हो गया बन्द मुख : चक्की थमी अरे, लो–
झाड़ा लेकर ही भागा चक्की वाला[1] !

[१९९]

●

झरनों में तू खो गया सरोवर जैसा
खो गया साधु तू बटमारों-चोरों में
मूढ़ों में तू खो गया गुणी पंडित-सा
तू राजहँस खो गया अरे कागों में !

[२००]

●

बस एक सांस : गिरि मुखरित होंगे तारों-से
गुम्बद गूँजेंगे; पुनः-पुनः दोहरायेंगे
सज्जन समझेंगे बात मात्र सकेतों से
डुगडुगी पीट लो, दुर्जन समझ न पायेंगे !

[२०१]



———

१. और २. ये दो पद लल्लेश्वरी द्वारा रचित भी माने जाते हैं ।



चरार-ए-शरीफ में शेख नूरुद्दीन वली का मज़ार